मुट्ठीभर धूप

कविता-संग्रह

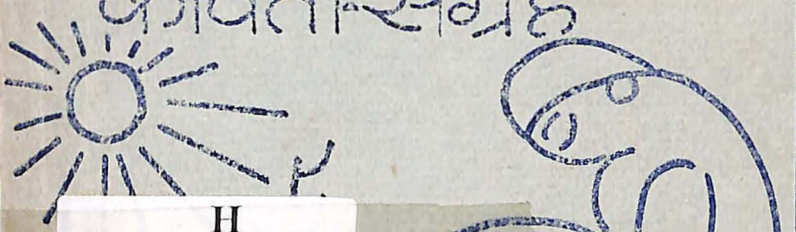

H
811.8
Sh 23 M

सुमन शर्मा

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SHIMLA

Mutthi bhar dhoop

मुट्ठी भर धूप

Suman Sharma

सुमन शर्मा

Ruchita Prakashan
Kangra

रुचिता प्रकाशन
विन्द्रावन - 176061
पालमपुर जिला कांगड़ा (हि० प्र०)

CATALOGUED

समर्पण

जीवन के बीहड़ पथ पर
निरन्तर संबल बनती रहीं
जिनकी पुनीत स्मृतियां
उन्हीं
ममतामयी मां व श्रद्धेय
पिता जी को सादर समर्पित

सुमन

Acc. No. G-1302
Date 11.5.92

Library IIAS, Shimla
H 811.8 Sh 23 M
G1302

H
811.8
Sh 23 M

दो शब्द

हिमाचल के नवोदित साहित्यकारों में जो नया नाम उभरा है वह सुश्री सुमन शर्मा का है। प्रस्तुत कविता संग्रह 'मुट्ठी भर धूप' उन की पैंतालीस कविताओं का ऐसा संग्रह है जो आज के कटु परिवेश में दबे हुए मानव की छटपटाहट उसके भीतर पनप रहे असंतोष, आक्रोश एवं विद्रोह भाव को अभिव्यक्त करता है।

लेखिका एक कहानीकार के रूप में पहले ही अपने आपको स्थापित कर चुकी है। नारी हृदय की वेदना, उसका दर्द, घुटन, संत्रास एवं ऊब के अतिरिक्त टुकड़ा-टुकड़ा करके जिन्दगी को जीने के कारण उसके हर पहलू को पकड़ने एवं कुरेदने का प्रयास उनकी कहानियों में हो रहा है।

आजकी कविता टूटती परम्पराओं, सामाजिक तथा राजनैतिक भ्रष्टाचार से क्षुब्ध युवा मानस की अभिव्यक्ति है। आज की हिन्दी कविता जीवन के ठोस धरातल पर आ खड़ी हुई है। उसने सड़े-गले मूल्यों को अस्वीकार किया है। उसने वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करके ढोंगी-पाखंडी परिवेश का पर्दाफाश करते हुए दोहरी जीवन व्यवस्था को नकारते हुए संघर्षशील चेतना द्वारा नयी कविता को शक्ति प्रदान की है।

प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में भी कवयित्री ने बेलौस, एवं निर्मम अभिव्यक्ति की है। बिना झिझक एवं संकोच, बिना कुछ छुपाए, अपनी हृदय की भावना को दर्शाया है। स्पष्ट एंव सपाट कथन के लिए जैसी सरल नंगी जन भाषा की आवश्यकता होती है। वह इस कविता-संग्रह में प्रयोग हुई है।

समर्पण

जीवन के बीहड़ पथ पर
निरन्तर संबल बनती रहीं
जिनकी पुनीत स्मृतियां
उन्हीं
ममतामयी मां व श्रद्धेय
पिता जी को सादर समर्पित

सुमन

Acc. No. G-1302
Date 11.5.92
SIMLA

Library IIAS, Shimla
H 811.8 Sh 23 M
G1302

H
811.8
Sh 23 M

दो शब्द

हिमाचल के नवोदित साहित्यकारों में जो नया नाम उभरा है वह सुश्री सुमन शर्मा का है। प्रस्तुत कविता संग्रह 'मुट्ठी भर धूप' उन की पैंतालीस कविताओं का ऐसा संग्रह है जो आज के कटु परिवेश में दबे हुए मानब की छटपटाहट उसके भीतर पनप रहे असंतोष, आक्रोश एवं विद्रोह भाव को अभिव्यक्त करता है।

लेखिका एक कहानीकार के रूप में पहले ही अपने आपको स्थापित कर चुकी है। नारी हृदय की वेदना, उसका दर्द, घुटन, संत्रास एवं ऊब के अतिरिक्त टुकड़ा-टुकड़ा करके जिन्दगी को जीने के कारण उसके हर पहलू को पकड़ने एवं कुरेदने का प्रयास उनकी कहानियों में हो रहा है।

आजकी कविता टूटती परम्पराओं, सामाजिक तथा राजनैतिक भ्रष्टाचार से क्षब्ध युवा मानस की अभिव्यक्ति है। आज की हिन्दी कविता जीवन के ठोस धरातल पर आ खड़ी हुई है। उसने सड़े-गले मूल्यों को अस्वीकार किया है। उसने वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करके ढोंगी-पाखंडी परिवेश का पर्दापाश करते हुए दोहरी जीवन व्यवस्था को नकारते हुए संघर्षशील चेतना द्वारा नयी कविता को शक्ति प्रदान की है।

प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में भी कवयित्री ने बेलौस, एवं निर्मम अभिव्यक्ति की है। बिना झिझक एवं संकोच, विना कुछ छुपाए, अपनी हृदय की भावना को दर्शाया है। स्पष्ट एंव सपाट कथन के लिए जैसी सरल नंगी जन भाषा की आवश्यकता होती है। वह इस कविता-संग्रह में प्रयोग हुई है।

"इस बोझ ढोती जिन्दगी में,
मशीन को नकारा नहीं जा सकता,
इसीलिए तो औरत को आधुनिक युग में,
मशीन बना दिया है
घर और बाहर का दोहरा काम
संभालने के लिए ।

कविताओं में चित्रित पात्र, स्थितियां, मृदु भावानुभूतियों का रूप लिए हुए हैं। विषयगत विविधिता के साथ - साथ मानव संवेदना की प्रस्तुति इन कविताओं की विशिष्ठता है। "जंगल की आग" नामक कविता की इन पंक्तियों से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है :—

जलने के बाद तो कुछ बचता ही नहीं,
चाहे आग जंगल में लगे,
चाहे आग मन में हो।

आशा है प्रस्तुत कविता-संग्रह द्वारा कवयित्री अपनी निश्चित पहचान बनाने में पूर्णतया सफल होंगी।

सुशील कुमार अवस्थी

प्रधानाचार्य,
चान्द पब्लिक हाई स्कूल
घुग्गर (पालमपुर)

प्रथम संस्करण 1987

मूल्य बीस रुपए

C सुमन शर्मा

प्रकाशक
रुचिता प्रकाशन,
बिन्द्राबन, पालमपुर
जिला कांगड़ा (हि. प्र.)

मुद्रक : सिटी लाईट प्रिंटर्ज, पालमपुर
दूरभाष : 65

क्रम

तमाशा	1
कहीं खो गया है	4
हादसा	6
जाला	8
सम्बन्ध	10
कविता	12
अगर...	14
बर्फ की ठंडक	16
एक रात	18
सहारा	20
अन्तर	22
जंगल की आग	26
आंखें	31
प्रतिध्वनि	32
सायों का शहर	34
भ्रम	38
दाग	40
डलझील और ताजमहल	42
आत्मबोध	48
अजनबी शहर	50
व्यस्तता	53
सूरज का उजाला	56
क्रम	57

हकीकत	59
नन्हीं आंखें	60
मशीन	61
प्यार मर चुका है...	62
उम्मीदों की लौ	65
सिलसिला	66
भीड़	68
तितली	70
परछाइँ	73
मां	75
मुखौटा	80
नानी की बैसाखियाँ	82
हसीन	85
शरमाई सांझ	86
इन्द्रधनुष	88
रेलगाड़ी	95
श्मशान शहर	97
ढलती शाम	100
आदर्श	102
पतझड़	105
चिड़िया	108
बात छड़ी की	110

तमाशा

उसने कहा
कि
चलते रहो
तो
मंजिल मिलेगी ही.
मुझे
उसने
हमेशा
बढ़ने की सलाह दी.
पर
मैं
नन्हीं ठोकर
से निकले
लहू से घबराकर
एक कोने में
दुबक कर
बैठ गई.
मेरे ही सामने
अन्य भी
आगे बढ़े.
उसनें

हाथ बढ़ाया
फिर चाहा
कि
मैं
आकाश तक उठूं.
पर
मैं
सिर झुका
मिट्टी की
परतों के नीचे
दबने लगी.
डर था
दुबारा
कहीं ठोकर
मेरा
अस्तित्व ही
न मिटा दे.
पर
आज
देखती हूं
वह
आकाश से भी
ऊंचा उठा है
गन्तव्य में
पहुंच वह
फूलों में

मुस्करा रहा है
और
मैं
वहीं खड़ी
आती-जाती
भीड़ में
तमाशा
बनी हूं.

कहीं खो गया है......

इस शोर
और इन सर्द-गर्म
हवाओं के
आंचल में
बदलते मौसम की तरह
कहीं खो गया है
मेरा
अपना ही बचपन.
इस लू से झुलसी
चमड़ी पर
कालेपन के साथ-साथ
दरारें भी उभर आई हैं
इन्हीं दरारों की माटी
की तरह
बिखरा है मेरा वर्तमान
और
हवा में
गैस के गुब्बारे
की तरह
लटक गया है
मेरा भविष्य.

सम्बन्धों के
लिजलिजे एहसास ने
तोड़ा-मरोड़ा
फिर
कूड़ेदान में फेंक दिया
अस्तित्वहीन.
भीड़ बढ़ी
मिमियाती रही
सम्बन्धों की आवाज
और
चरमराकर गिरे
ईंटों की तरह
रिश्ते.
धूल—
बनी,
बढ़ी
और जमती गयी.
इसी बीच
कर्तव्य की
ओट तले
सिसकता हुआ
मेरा बचपन
कहीं खो गया.

कहीं खो गया है......

इस शोर
और इन सर्द-गर्म
हवाओं के
आंचल में
बदलते मौसम की तरह
कहीं खो गया है
मेरा
अपना ही बचपन.
इस लू से झुलसी
चमड़ी पर
कालेपन के साथ-साथ
दरारें भी उभर आई हैं
इन्हीं दरारों की माटी
की तरह
बिखरा है मेरा वर्तमान
और
हवा में
गैस के गुब्बारे
की तरह
लटक गया है
मेरा भविष्य.

सम्बन्धों के
लिजलिजे एहसास ने
तोड़ा-मरोड़ा
फिर
कूड़ेदान में फेंक दिया
अस्तित्वहीन.
भीड़ बढ़ी
मिमियाती रही
सम्बन्धों की आवाज
और
चरमराकर गिरे
ईंटों की तरह
रिश्ते.
धूल—
बनी,
बढ़ी
और जमती गयी.
इसी बीच
कर्तव्य की
ओट तले
सिसकता हुआ
मेरा बचपन
कहीं खो गया.

हादसा

सड़कों, रास्तों
और
गलियों से होता
हुआ चला गया
दिल के दरवाजे
पर दस्तक दे
जिस्म को
अस्थिपिंजर बनाता
एक
हादसा गुजर गया.
दिन, पहर, पलों का
हिसाब रखा
हवा, बारिष, धुन्ध
का ठहाका याद रखा
और तूफानों से
जूझता
एक हादसा
गुजर गया.
सम्बन्धों की
रेखाओं से
ऊपर उठता हुआ

काली रात के
सायों में उलझता
इतनी चुप्पी में भी
एक
हादसा गुजर गया.

जाला

कितने ही दिनों से
निरन्तर
देखती हूं
उस
नन्हीं मकड़ी को
जो
चारों ओर जाल
बुनती जा रही है.
हर पल
इसी काम में
उलझी है वह.
उसे अपने सामने बिखरे
परिवेश को
आहट तक नहीं मिलती
मगर
छिपकली घूमती है...
देखते ही देखते
उसने
झट से मकड़ी

को दबोचा

मैं स्तब्ध रह गई...

टूटा जाला

अब

धागों में बिखरा

मेरा मुंह चिढ़ा रहा है

सम्बन्ध

बसन्त में बनीं
नई-नई पत्तियों जैसे
कितने ही
सम्बन्ध बन जाते हैं
वृक्ष
पल्लवित, पुष्पित हो
पतझड़ के थपेड़ों से
बचने का प्रयास
करता हुआ भी
पीली पत्तियाँ
नीचे
गिराने लगता है.
क्योंकि
पीलापन लिए
शाख से चिपकना
मूर्खता है
बिल्कुल इसी तरह
नए सम्बन्धों का जाल
मेरे चारों ओर था
पर
धीरे-धीरे

जाल
छंटता गया
और अब मैं
अकेला
अस्तित्व लिए
सूखे पेड़ की तरह
बसन्त की प्रतीक्षा में
ताकि
फिर
पुराना सिलसिला चले.

कविता

कविता कोई
मूंगफली जैसी
चीज़ नहीं है
कि बाजार जाकर
खरीद लाए ...
कविता यह
भी नहीं कि
जो कागज पर
लिखा
वही 'कविता' हो गया।
कविता तो
धड़कन है जीवन की
वह तब उतरती है
कागज पर
जब दिल की
अनन्त गहराई में
कुछ कुलबुलाता है—
जब भीतरी
सुलगाहट बढ़ती है — —।
या फिर

यथार्थ
कड़वे जहर की तरह
पीना पड़ता है।
कविता कई-कई बार
यूं ही छलक आती है
जैसे आँखों से दो बूंदें
या बादल की बरसात!!!
वैसे
कविता तो
जीवन होती है
मैं उसे
मूंगफली के
छिलके की तरह
फेंकने वाली
चीज भी नहीं मानती —
वह तो बीज है
यथार्थ का
जो अंकुरित
होने के लिए
धरातल तलाशता है।

अगर......

अगर तुम
आते ही न
मेरे द्वारे
तो
इन आँखों में
रंग कहां से
उतरता ?
कहाँ समय
मिलता इस
अस्तगामी सूर्य की छटा
निहारने का ?
और
कब मैं कहती
कि सपने
हमें उड़ा के
ले जाएं ?
अगर तुमने
धीमे से
द्वार खटखटाया
ही न होता तो

मैं
आँखें मूंदे
सपनों में डूबी होती
यह तो तुमने ही बताया
कि
सपने धरती में ही
खोजने
बनाने हैं —
उन्हें
हकीकत दे — ।
इस रेगिस्तान सी तपती
दोपहरी में
सोचती हूं —
अगर तुम न
मिलते तो
मैं धूल बन
पृथ्वी के
वक्ष से ही
चिपकी रहती ।

बर्फ की ठंडक

जिस तरह से भी कटा
दिन कट ही गया
सुन्दर सपनों
की पूर्ति
अब आंखें बन्द
करके करनी है।
सारे का सारा
दिन
आग की तरह
गर्म था।
कोई हरकत नहीं
कोई आवाज नहीं,
खाली-खाली
बेजान-सा दिन
कट गया।
न कुछ कहा,
न कुछ सुना,
बस —
आँखों ने एक - दूसरे

को देखा
और
महसूस लिया सब कुछ
कि इस लू से गर्म
पसीने से चिपचिपे
माहौल में
ठंडक नाम की
चीज ढूंड़नी है,
ठंडक तो
कैद है
'फ्रिज में पड़ी
बर्फ की तरह।

एक रात

बाहर खामोशी है ।
पर
कभी-कभी
कदमों की आहट
होती है ।
अन्दर सांसों
की आवाजें हैं
और घड़ी की
बेसुरी
टिक-टिक !
कुत्तों की आवाजें
निरन्तर बढ़ती हैं ।
रात में
इस शहर में
केवल कुत्तों
और गीदड़ों
की आवाजें
बाहर के
वातावरण में
अजीब-सा

भय उत्पन्न
कर रही हैं।
मैं परदा उठा
देखती हूं—
सफेद दूधिया
चाँद
विहँस रहा
है
प्रकृति की
छटा देख।

'सहारा'

पहली बार
जब
टूटे थे सपने
तो
अँबुआ तले खडे हो
मेरे नयन
झर-झर बहे।
लट पगली बावरी
सी,
उड़ती-बिखरती रही।
पहला दर्द
कुछ
भीतर तक
हिला गया था
फिर खुद को
खुद ही ने
संभाला था।
फिर इतनी
बार खण्डित हुए
हैं सपने......
इतनी टूटी हैं

भावनाएं
कि एक अटूट
सिलसिला
बना है यह !!
पर
अब मेरा दिल
न चोट
खा रोता
है न
हँसते हैं
होंठ विजय पर !
क्योंकि किसी
और को नहीं
खुद
अपने ही आप को
अपना
सहारा बनाया है
मैंने ।

Acc. No. G-1302
Date 11.5.92

अन्तर

कभी
लगता है
कि
हम
क्या दे रहे हैं
आने
वाली पीढ़ी को ?
क्या
हमने
सहेज
रखा है ?
और
क्या होगा
जो
उन्हें
उनके
अनुकूल लगेगा ?
कहीं
ऐसा तो नहीं
कि
जो हम

उन्हें देंगे
वो
उनकी
पकड़ और
समझ के
दायरे से
बाहर
होगा
या
फिर
वही
एक
दूरी
बन
जाएगी
एक पीढ़ी की
दूसरी से
जिस दूरी में
जिस
छिपाव में
फिर
वही तनाव होगा
जिसे
मेरी
पिछली पीढ़ी ने
फिर
स्वयं मैंने

महसूस किया.
ऐसा नहीं
कि
मैं यह नहीं
चाहती कि
यह पीढ़ी
पिछली पीढ़ी से
अलग न हो.
मगर
इतनी
अलग न
हो जाए
कि
सब कुछ
आकाश में
टंगा-टंगा
सा लगे
मन भी
मस्तिष्क भी.
मैंने
अम्मा को
देखा है
जो टूटती थी
जब
बात फर्क
लगती थी.

उसकी
टूटन
उसकी
खाली खाली आँखें
मुझे
कचोटती थीं.
पर तब
मैं
कुछ नहीं समझी
कि
यह दूरी
तो उन्हें
काट रही है.
अब
लगता है
कि एक पीढ़ी
दूसरी
पीढ़ी से
कुछ
विकसित हो
आगे बढ़े
मगर
पिछली पीढ़ी
को भी
सम्मान दे
अपनापन दे.

महसूस किया.
ऐसा नहीं
कि
मैं यह नहीं
चाहती कि
यह पीढ़ी
पिछली पीढ़ी से
अलग न हो.
मगर
इतनी
अलग न
हो जाए
कि
सब कुछ
आकाश में
टंगा-टंगा
सा लगे
मन भी
मस्तिष्क भी.
मैंने
अम्मां को
देखा है
जो टूटती थी
जब
बात फर्क
लगती थी.

उसकी
टूटन
उसकी
खाली खाली आँखें
मुझे
कचोटती थीं.
पर तब
मैं
कुछ नहीं समझी
कि
यह दूरी
तो उन्हें
काट रही है.
अब
लगता है
कि एक पीढ़ी
दूसरी
पीढ़ी से
कुछ
विकसित हो
आगे बढ़े
मगर
पिछली पीढ़ी
को भी
सम्मान दे
अपनापन दे.

जंगल की आग

चीढ़ की
हरी नुकीली पत्तियाँ
पहले
हल्की पीली
फिर
जब
गहरी भूरी हुईं
तो
हवा के
तीव्र वेग से
धरा पर
गिर गईं.
सारे का सारा
जंगल
चीढ़ की
भूरी पत्तियों से
भर गया
तो
नन्हें अंकुर
मुरझा गए.
बस

एक भूरापन
सा चिपक गया
जंगल में.
फिर
उन पत्तियों को
आग
लगा दी गई
या
लग गयी
चाहे
कैसे भी.
पर
हरा-भरा सा जंगल
लाल हो उठा
आग से.
पक्षियों,
पशुओं की
चीखों से
सारा जंगल
गूंज गया.
वो नीड़ जो
बैया ने
तिनका-तिनका
चुनकर
बनाया था
और नन्हीं

मैना ने
जहाँ अपना
बचपन
फिर
यौवन
गुजारा था
सब जलकर
राख हो
गया.
सफ़ेद खरगोश
भागते गए
दूर तक
और जो छूट गए
उन्हें
संभाल पाना
उन्हें
आसान
नहीं लगा
तभी तो
जो भाग सका
वो
भाग गया
चीखता चिल्लाता.
आग
चुपचाप नहीं जली थी
सारा जंगल
रो रहा था

वो पत्ती
जो पेड़ पर
लगी थी
झुलस गई थी.
जंगल में
सिसकियाँ,
आहें
चीखें
सब कुछ घुला था.
पर आग थी
कि
सब कुछ
राख कर गयी.
दूसरे दिन
आग
बुझ गई थी,
हरे भूरे, गुलाबी
जंगल में
कालिख
पुत गई थी
बैया, गौरैया, मोर
एक डाली से
दूसरी डाली पर
उड़ते
उदास-उदास से.
मृग
गीदड़

सब कहीं
दूर जाकर
जो
खुद को
बचा सके थे
आए थे
देखने कि
क्या
कुछ शेष भी
बचा है ?
सभी
अपनी-अपनी
पुरानी जगहों
व
ठिकानों में
ढूंड़ना चाह
रहे थे
पुराना प्यार
मगर
जलने के बाद
तो
कुछ बचता ही नहीं
चाहे
आग जंगल में लगे
चाहे
आग मन में हो.

आँखें

सुबह उठते ही
उसकी
आँखों को देखती हूं
ताकि
उनकी चमक तले
सारा दिन
गजार दूं
दिन का उजाला
भी
उन आंखों के आगे
कुछ नहीं है.
रात के
अंधेरे में
मैंने दो दीप
जला रखे हैं.
सलामत रहें
ये आंखें
जिनसे उज्ज्वल
है
संसार मेरा.

प्रतिध्वनि

रात
कई-कई बार
कहकहा लगाती हुई
उतरी है
मेरे आंगन में.
थोड़ी ही देर में
कहकहा
हवा में
घुल गया
और
खामोशी
चारों ओर
टंग गयी.
जिसे कमरे की
छत पर
दीवारों पर
टंगी मैं
देखती रही.
कई बार
उस खामोशी
में ही

मैंने
बातें भी कीं
जिन्हें
मेर अतिरिक्त
किसी ने नहीं
सुना
लेकिन
प्रतिध्वनि
देर तक
कानों में
गूंजती रहीं.

प्रतिध्वनि

रात
कई-कई बार
कहकहा लगाती हुई
उतरी है
मेरे आंगन में.
थोड़ी ही देर में
कहकहा
हवा में
घुल गया
और
खामोशी
चारों ओर
टंग गयी.
जिसे कमरे की
छत पर
दीवारों पर
टंगी मैं
देखती रही.
कई बार
उस खामोशी
में ही

मैंने
बातें भी कीं
जिन्हें
मेर अतिरिक्त
किसी ने नहीं
सुना
लेकिन
प्रतिध्वनि
देर तक
कानों में
गूंजती रहीं.

सायों का शहर

सांझ के आंचल में
सिमट गई है
खामोशी.
आकाश पर टंगा कल
और
ज़मीन पर पसरा
आज !!
गर्मी की तेज
लाल धूप
साये ही साये
सड़कों पर
और
अपने ही
सायों को
पकड़ने का
असफल प्रयत्न.
भानु साये
दिखा देता है
कालापन फैलता
तो
पकड़ में

कुछ नहीं आता
यहाँ तक कि
अपना साया
भी नहीं.
रंगों पर
धूल जम गई...
रात पर
बनावटी
दुधिया रोशनी
लपेट
दिन का उजाला
कमरे में
फैलाने का प्रयत्न !!
आज
पिघल रहा है
कल
बिलख रहा है
और परसों
देखने की चाह में
आँखें
थककर भी
खुली हैं.
पक्षियों के कलख
में भी
शोर जुड़ गया है...
बिल्ली ने
चिड़िया को

देखते ही देखते
निगल लिया.
शाम
अब
खामोश है
तारे
ढूंढ़ रहे हैं
आज और
कल को.
अनसूंघी, अनछुई गंध
दूर - दूर तक फैली
शमा जली, पिघली,
इन्तज़ार की
हद गुजर गई.
अगरबत्ती का
खुशबूदार धुंआ
फैला कमरे में
मदिरा की गंध
पीने के लिए.
साये
उलझते गए
प्रश्न
टंगते गए
हवा में
नमी बढ़ी
हाथ खाली
उंगलियां उलझीं
पकड़ने सायों को

लेकिन
साया कभी हाथ
नहीं आता
सिर्फ
कालिख बन
सड़कों, गलियों, दीवारों से
चिपक कर
कहता—
'मुझे पकडो तो'
भीतर का बचपना
किलकारें भर
हाथ फैलाता
न हाथ आता साया
न पीछा छोड़ता
मृगतृष्णा-सी
हवा में तैरती है.
हाथ खाली हैं
दिल विरान है
और
यह शहर
सिर्फ सायों का
शहर है
यहाँ आदमी
नहीं बसते.

भ्रम

लोग
जौंक से
डरते हैं
इसलिए नहीं
कि
उसके मानव शरीर से
चिपकने से
मौत की संभावना
रहती है
पर
इसलिए कि
वह
शरीर में उत्पन्न
रक्त को चूसती है
उस
रक्त को
जो
गहरा लाल होता है
और
जिसके नाम पर

खूनी-रिश्ते
बनते हैं.
परन्तु
अब कुछ
समय से
जोंकें
भूख से
तड़पने लगी हैं
क्योंकि
किसी के
शरीर में
खून की
बूंद नहीं है.
इस खून को
जौंक ने नहीं
आदमी ने ही
चूसा है
सेहतमन्द होने के
भ्रम में.

दाग

वो राख
जो
कुछ क्षण पहले
उसने
सिगरेट से
झाड़ी
उसके ही
कपड़ों पर गिरी है.
वह
उस राख को
हाथ से
पौंछ कर
अपनी
सफेद कमीज का दाग
छुड़ाने का
प्रयत्न कर
रहा है.
मैं
देखती हूं
कि
सिगरेट से झड़ी

राख का निशान
अब भी
उस सफेद
कमीज पर
बना है
और
सिगरेट
बुझ गई है.

डल झील और ताजमहल

ठण्डी हवाओं में
झूमते हुए
मैंने
कश्मीर की
'डल-झील' देखी है.
पानी का
विस्तृत सीना
और
डल में पडती
अस्तगामी सूर्य
की किरणें
झिल-मिल करती
गातीं भी
देखी हैं
मैंने
आगरा
नहीं देखा है
और
मुहब्बत का ताज
भी नहीं.
मगर
अब
कश्मीर में

मैंने
ताजमहल
देख लिया है.
झील के विस्तृत सीने
पर खेलती तरंगों
पर उतरे
आकाश के बिम्ब
और
हवा में तैरते
सफेद मेघों का
ताजमहल
डल में उतर आया
और
मैंने उसे
काफी देर तक
देखा है.
डल में कमल
भी हैं
पत्तियां भी
मैंने
डल-झील में
जगमगाते
सपने तैरते
देखे हैं
जिन सपनों
की वजह से ही
आबाद है झील
और प्यार की

मीठी सुगन्ध
से बसा है
ताजमहल.
जरूरी नहीं कि ताजमहल
आगरा में ही हो
जहां बनेंगे सपने
खिलेगा
प्यार का फूल
वहां
सफेद, चितचोर
बादल ही
बना देंगे ताजमहल.
डल-झील
एक
जलमहल है
जहां उतरा ताज
और
देर-देर तक
खामोशी में भी
संगीत
गूंजता रहा.
शिकारा—
एक कल्पना है
'घर' की
एक सपना है
जिसे
दो दिल

लहरों में
खेलते, हंसते हुए
बुन डालते हैं.
और
दूर-दूर तक
चांदनी में
गिनने रहते हैं
अनदेखे फूलों को
और
आंखें मूंद महसूसते हैं
खुशबू को.
डल झील
जिन्दगी की
बात करती है
और
मैंने उसके
कहकहे, गीत
सब
चुपचाप सुन
लिए हैं.
बाहें फैला
उसने
सभी को पुकारा
और
कान में धीरे से
कहा—
प्यार करो

मगर
मेरे सीने में
मत झांकना
जहां
आज भी
टूटे सपनों के कंकर
दफन हैं.
जब सपने
टूटते हैं
तो
आवाज नहीं होती
और
डल-झील
'मां' बन जाती है
हर गम, हर आह को
दिल में
छुपा लेती है
मगर
खिले, चमकते
सपने सभी को
देती है
और
जब ये
हज़ारों
गीत, कहकहे,
खुशबू और मुहब्बत
एक साथ

डल के सीने पर
उतरते हैं
तो
वहां स्वयं ही
ताजमहल
बन जाता है.
मैंने
डलझील में
तैरता, गुनगुनाता
मुस्कराता
ताजमहल देखा है.

आत्मबोध

कभी जब
बहुत अधिक
खामोशी
मिलने लगती है
तब
लगता है
मैं
अकेली हो गई हूं.
बिल्कुल अकेला
अस्तित्व देख
घबराने लगती हूं
क्योंकि
ऐसे में
आत्मचिंतन का
समय मिलता है
और
जब मैं
अपनी ही
दृष्टि में
गिरने लगतो हूं
तो
यह

एकाकीपन मुझे
चुभता है.
पाप-पुण्य का
लेखा-जोखा
अन्दर बैठा
साधु
करने लगता है
तब
मुझे स्वयं से ही
डर लगता हैं.
और इस
डर को समाप्त
करने के
लिए मैं
शहरी भीड़-युक्त
गलियों में
घूमती हूं
स्वयं को
भूले हुए.

अजनबी शहर

इन
ऊंची - ऊंची
पहाड़ियों को देख
सहसा
चौंक-सी गई हूं.
अब इनमें
हरी - हरी दूब नहीं
केवल
एक अजीब-सा
नंगापन है
जो आंखों में
चुभता है.
आकाश
निर्मल है
पर
उसकी वह
मासूमियत
जाने कहां
जा छिपी
जो मुझे
खेलते - कूदते
देख

भली लगती थी.
सूरज
सुबह उठता
तो लगता है
उसमें
पहले जैसी
ताजगी नहीं है.
धरा को
अपने चारों ओर
घूमता देख
अब
यह भी थकने
लगा है
तभी तो
यन्त्रचालित-सा
पूरब से पश्चिम का रास्ता
थके कदमों से
नापता है.
आज
जाने क्यों
यह मेरे बचपन
का शहर
मुझे
अजनबी लग
रहा है ?
शायद अब

पुराने मीठे - मधुर
एहसास
रीतने लगे हैं
और यहां की
हर वस्तु
परायेपन का
मुखौटा ओढ़े
मेरे
अपने, प्यारे
शहर को
अजनबी
बना रही है.

व्यस्तता

कहीं भी
कुछ
टिकाव-सा
नज़र नहीं आता.
मद मस्त
बासन्ती पवन
भी
दिल को
भाती नहीं
न ही
अच्छा लगता है
दैनिक-पत्र
के प्रथम पृष्ठ
को देखना.
वही तनाव
जो घर में है
जो मन में है
अखबार के
प्रथम पृष्ठ
पर भी है.
जब भी

किसी से मिलें
कुशलता
पूछते हैं
होंठों पर मुस्कान ला.
और वही
चिरपरिचित-सा उत्तर
कि ठीक हूं
या
सब ठीक
चल रहा है.
समझ नहीं आता
कि
ठीक कहां है ?
न तो
अखबारों में छपा
ठीक लगता है
और
न ही
ओठों पर
ज़बरदस्ती
चिपकाई गई मुस्कान.
क्यों सारे के सारे
वातावरण में
फैल गया है
कड़वाहट का आवरण ?
क्यों
छिपाव-दुराव

बढ़ रहे हैं ?

सब कुछ

अपनी पकड़ से

बाहर लगता है...

क्योंकि

सब व्यस्त हो

गए हैं

अपने में

या

दूसरों की टाँग

खींचने में.

सूरज का उजाला

मुस्कराते हुए
वातावरण की
खुली खिड़की से
कल का
सबेरा
झांकता है
जो
बहुत उजला-उजला है
चांद की तरह का
पीलापन
उसमें नहीं है
नवोदित भानु-सी
चमक लिए
सवेरा
आंखों के गलियारे
में
उतरता है.
उसे छू कर देखना
फिर
वन्दना करना
ताकि
उस सवेरे का सूरज
ऊंचा, बहुत ऊंचा उठे
अंधेरा
दूर भगाने के लिए.

क्रम

वह
वैसे ही आई
जैसे आती थी.
वह
वैसे ही मुस्कराई
जैसे
बहुत पहले
मेरी
आँखों से आँखें
चार होने पर
हंसती थी.
पर
अबकी बार
उसके होंठ खुश्क थे.
मैंने उन्हें गीला
करने के लिए
उसे
पानी नहीं दिया
न ही
चाय के कप के लिए पूछा.
शायद

मेरा ही भीतर
कुछ
बदल गया है.
मैंने
भागते हुए
उसके साथ
दो फलांग का रास्ता
तय किया-
फिर मैं
एक जगह बैठ गयी
और वह
बस में.
बस.....
इस के बाद
हमारे भागने-दौड़ने का
क्रम बढ़ा
और
प्यार का झरना
सूख गया.
यह सूखापन
मेरी आँखों से
झलकता है
और उसके
शुष्क सफ़ेद
ओठों से.

हकीकत

आदम और ईव
की कहानी-सी
बन गई है
इन दिनों.
हवा में
खुशबू-सी घुल
गयी है
और
मेघों के आंचल में
मेरा मन
बस-सा गया है.
लगता है
मैं भी
आदम की पसली
से बनी हूं
और यह
आदम
कोई और नहीं
मेरे ही
जीवन की
हकीकत है.

नन्ही आँखें

नन्हीं आंखों के
भूरेपन में
मैंने
स्वप्न देखे हैं
जो
पारे की तरह
चमकते हैं.
उन
आंखों की गहराई
में दिखी
रोशनी की चमक
एक
जीवित रोशनी है.
आशा के
जलते दीप देखे हैं
जो
जलते हैं
तो
प्रकाश से
तन-मन
नहा जाता है.
मैंने
नन्हीं आँखों में
जिन्दगी
देखी है.

मशीन

इस बोझ ढोती
जिन्दगी में
मशीन को
नकारा नहीं
जा सकता.
इसीलिए तो
औरत को
आधुनिक युग में
मशीन
बना दिया है
घर और बाहर
का
दोहरा काम
संभालने के लिए.

प्यार मर चुका है...

अब इस शाम को
जंग लगने
लगा है.
हर एक प्राणी
आहत
इस
कोलतार युक्त
नागिन सड़क पर
स्वयं को
रेंगता हुआ
महसूस करने
लगा है.
आदमी की कीमत
वक्त के साथ
घटने लगी है
तभी तो
एक टूटता हुआ
एहसास
उम्र की दहलीज पर
खड़ा
दस्तक करने लगा है
हर आहट पर

घायल, प्रताड़ित मन
और भो अधिक
घायल हो
सड़ने लगता है
क्योंकि अब
प्यार मरने लगा है
और
सारी जिंदगी
सिर झुका
कलम घिसने
अथवा
रास्तों की लम्बाई
मापने तक
सिमट कर
रह गयी है.
हर लम्हा
हर पल
एक अबोली कहानी लिए
धीरे-धीरे
सरक जाता है
तो
लगता है
हम समुद्र के
किनारे पर
खड़े
सिर्फ तमाशा
देखते रहे हैं

उन
उठती गिरती तरंगों का
जो
हमेशा ही
कुछ न कुछ
सिखाने के
प्रयत्न में रहीं.
अकेला और
बिल्कुल अकेला
अस्तित्व लिए
मानव खुद को
घसीट रहा है
इस
शोर भरे युग में.
जहाँ पर
शोर तो है
पर
व्यक्ति चुप
स्वयं में सिमटने के
प्रयत्न में
ताकि
कोई लांछन न लगे
क्योंकि
इस सतरंगी युग में
मानव का मानव
के प्रति
उमड़ता
प्यार मर चुका है.

उम्मीदों की लौ

उम्मीदों के साये
अब भी
जिन्दा है
जैसे
सूरज की किरण का
एक नन्हा टुकड़ा
बरसात के
काले बादलों के बीच
चमकता है.
गम की आँधियों
के स्याह
अंधेरे में
उम्मीदों की लौ
अभी
जिन्दा है
तभी तो
मैं जिन्दा हूं
मेरे इरादे
जिन्दा है.

उन
उठती गिरती तरंगों का
जो
हमेशा ही
कुछ न कुछ
सिखाने के
प्रयत्न में रहीं.
अकेला और
बिल्कुल अकेला
अस्तित्व लिए
मानव खुद को
घसीट रहा है
इस
शोर भरे युग में.
जहाँ पर
शोर तो है
पर
व्यक्ति चुप
स्वयं में सिमटने के
प्रयत्न में
ताकि
कोई लांछन न लगे
क्योंकि
इस सतरंगी युग में
मानव का मानव
के प्रति
उमड़ता
प्यार मर चुका है.

उम्मीदों की लौ

उम्मीदों के साये
अब भी
जिन्दा है
जैसे
सूरज की किरण का
एक नन्हा टुकड़ा
बरसात के
काले बादलों के बीच
चमकता है.
गम की आँधियों
के स्याह
अंधेरे में
उम्मीदों की लौ
अभी
जिन्दा है
तभी तो
मैं जिन्दा हूं
मेरे इरादे
जिन्दा है.

सिलसिला

मां
आज नाराज है
इसलिए कि
अधिकारों की
मांग के लिए
मैं
चिल्लाई थी,
मेरा
विचार था
घुटते रहना
मौत है
और
सांस लेती
मुर्दा-सी जिन्दगी
मैं नहीं
चाहती.
मैंने
मां की
बूढ़ी आंखों में
उदासी
देखी है.

बुझे अंगारे की तरह
आंखें देखने में
मुझे
कचोटती हैं
ओंर भी
बहुत-कुछ
देखा है.
पर
उसकी आँखों की
उदासी
चेहरे की चुप्पी
जब
मेरा दम
घोटने लगेगी
तो मैं
विद्रोह के लिए
माफी मांगूगी.
और
अन्य विद्रोहों की तरह
मेरा
यह विद्रोह
राख हो जाएगा
और
यह एक
सिलसिला बन चुका है
घुटते रहने का.

भीड़

चारों ओर
भीड़ ही भीड़ है
सुन्दर भवनों की
चमक-दमक
व
सड़कों पर
पसरा कोलाहल.
अस्पताल में गंजती
किसी
रोगी की चीख
और
किसी
दूसरे किनारे से
आता पॉप म्यूज़िक का शोर.
काली-लम्बी
सड़कों पर
निशान ही निशान हैं
कदमों के.
बसों में,
सड़कों पर
बाज़ू से बाज़ू टकराते
घूमते लोग

अपने-अपने
ख्यालों में मस्त
अपने ही सपनों को
पकड़ने में लगे हुए.
कितनी अधिक भीड़ है
चारों ओर !
पर
कोई किसी को
नहीं पहचानता
एक दूसरे से
कटे से लोग.
बस
भीड़ ही भीड़
कहीं कोई
अपनापन नहीं.

तितली

उस बच्चे ने
आज
एक तितली
पकड़ी
काले-पीले पंखों वाली
उसके पंख
बहुत सुन्दर थे
मैंने
इसे भगवान की
कलात्मकता का
परिचय समझा
तो किसी ने
उसकी मासूमियत व
सौंदर्य को सराहा
वह बालक
बहुत खुश था
कहने लगा—
तितली पकड़ना
उसका
शौक है.
वह

बालक
फूल पर मंडराती
तितली पकड़ता
फिर
झटके से
उसके पंख
काटता....
तब
तितली उड़ती
नहीं है
कुछ देर तक
उसकी छटपटाहट
वह बालक
देखता रहता
यह देख
मेरा गला
भर आया.
मैंने
उसको घूरा
फिर कहा—
आओ,
तुम्हें मैं
रस्सी से बांध
तुम्हारी बाजू
काट दूं.
वह बालक

उस बात से
बौखलाया
पर
मेरी भाव-भंगिमा देख
सहम गया.
वह
जान गया
कि
तितली की तरह
ही
वह
छटपटाएगा
उसने
झट से
अन्य तितली के पंखों से
पकड़
ढीली कर दी
और
देखते ही देखते
वह
तितली
फूलों पर
मंडराने लगी थी.

परछाईं

काली
टेढी-सी
सड़कों पर
दूर दूर तक
कुछ नजर नहीं आता.
कभी-कभार
आभास मात्र ही
होता है
कि
कोई काया है
जो सरक
रही है.
अंधेरा नहीं है
मगर
आलोक भी नहीं.
ऐसे में
आदमी
नजर नहीं आता
केवल
परछाई सी
दीखती है

उड़ती-भागती
पकड़ से दूर
स्पर्श के दायरे से बाहर.

एक
खालीपन-सा है
कि
जी रहे हैं
एक
परछाईं की तरह
निर्जीव से.

माँ

वह
वहां खड़ी
देखती ही रही
पहाड़ों की चोटियों को
और
नदियों के
बिस्तृत फैले
आँचल को.
उसका मन किया
वह
धरती के वक्ष
से लगकर
मिट्टी को चूम ले.
धरती
हमारी 'माँ' है
उसने अपनी नानी
फिर माँ से
कई बार
सुना है.
तभी तो
उसने

मां को दिल से
लगाए रखा.
धरती का सीना
बहुत विस्तृत है
और
सारी की सारी मिट्टी
उसकी अपनी है.
इसके ऊपर उगते
फूल, पत्तियां
सभी
उसकी अपनी हैं.
मां के तन के
विभिन्न अंगों को
उसने
कभी भी
तन से अलग
नहीं समझा.
वह
जानती है सभी
अंगों के महत्व को.
उसे पता है
जब आंख
काम न करे
तो क्या होता है ?
और दिल अगर
तन से अलग
कर दिया जाए

तो सारे का सारा
जिस्म महत्वहीन
हो जाता है.
तभी तो वह
मां के सीने से
लिपट
उसे पूरे का पूरा
पकड़ने के प्रयास
में रहती.
उसने
अब की बार देखा
कि
नदियों में
खून बहने लगा है
गर्म
उबलता, लाल खून !!
उसने चाहा कि
मां से पूछे
कि
खून कहां से आया
तुम्हारी आंखों के
कोरों में ?
मगर
वह सहम गयी
सिसकी उभरी
उसने देखा कि
उसी के भाई ने

मां के दिल पर
चाकू रखा था
और वह
सिर्फ
दिल को
तन से काट
उसे
माँ कह रहा था.
दूसरे ने
मां की बाज़ू पर
बन्दूक रख दी थी.
वह
कुछ पल देखती रही
मगर
फिर देख भी न सकी.
उसका रक्त
जमने लगा.
उसे नानी
याद आयी
जो कहती थी
धरती के टुकड़े
नहीं होते.
वह
जानती है
मां सिर्फ
आंख ही नहीं है
मां सिर्फ
दिल ही नहीं है

मां तो पूरे का पूरा
तन है
इसका एक हिस्सा
काटने से
फलता-फूलता नहीं
वो तो
सड़ेगा ही.
उसने चिल्ला कर कहा—
मत रखो मेरी मां के
दिल पर चाकू !
लाल लहू से
जहर पैदा होगा.
वह
जोर जोर से
चिल्लाती रही—
फिर उसने देखा
नदियों में
दूध बहने
लगा है
क्योंकि
दोनों भाइयों ने
आज
एक थाली में
खाना खाया है
मां के
हाथों का बना.

मुखौटा

वो बातें
जो
आम नहीं होती थीं
अब
खुले आम
होने लगी हैं.
घर-घर, दीवार पर
भय चिपका है.
न मालूम
कौन-सा पल
कौन-सा सूरज
सब कुछ
राख कर जाए ??
पहले बूढ़ी
दादी-नानी
दरवाजा खुला
रखतीं थीं
घर का.
पर
अब
खुले दरवाजे के

अर्थ
ही बदल गए हैं.
दरवाजे बन्द
व
खिड़कियों पर
मोटे पर्दे हैं
ताकि
कोई देख न सके
भीतरीपन.
रेत, गारे, मिट्टी की
तरह के
घर की तरह ही
खाली, बुझा-बुझा
सा
हो गया है
दिल का घर भी.
मुखौटे पर मुखौटा है
न मालूम
किस मुखौटे को पहने
दानव घर के भीतर
घुस कर
चीर दे दिलों को

नानी की बैसाखियाँ

बहुत-बहुत
दिनों के बाद
मुझे
अपनी नानी का घर
याद आया.
पेड़ों पर झूलते
आम नजर आए
और
आंगन की चमेली
की मुस्कान
मस्तिष्क में कौंधी.
मेरा मन करता है
कि
सफेद मलमल की
चुनरी का छोर
पकड़ कर
नानी से कहूं—
"वो गीत सुनाओ न
जो तुम गाती थीं
जब तुम्हें
अपना
मायका याद आता था."

मेरी नानी
जमीन पर
उकड़ूं-सी बैठी रहती
हल्का सा घूंघट
किए रहती
जहां से उसका
झुर्रियों वाला चेहरा
नजर आता था.
वह बाहर
रास्तों पर
नज़र गढ़ाए रहती.
मैं तब बहुत
छोटी थी
मुझे समझ
नहीं आया कि
नानी बाहर क्यों
देखती रहती है?
उसकी आंखें
गीत गाते-गाते
गीली क्यों
होती हैं?
अब पता चला
कि
वह भाई जो
उसे लाल जोड़ा
पहना
इस घर की दहलीज

घर छोड़ गया
कभी नहीं लौटा
दुबारा
उसका हाल पूछने.
मेरी नानी ने
ब्याह करके
अपनी मां नहीं देखी
क्योंकि
उसकी मां का घर
बहुत-बहुत दूर था
पहाड़ों के पार.
...और मेरी नानी
की टांगों में
शक्ति नहीं थी...
बैसाखियों के सहारे
वह
मुश्किल से
आंगन तक
पहुंचती थी.

हसीन

अगर तुम्हारे
चेहरे पर
गम की काई
न जमी
होती तो तुम
बहुत
हसीन होते.
अगर तुम
इन्सान नहीं होते
तो
किसी मन्दिर के
देवता होते.
मेरी मानों
गम की काई को
पौंछ दो
और
हसीन बन जाओ.

शरमाई सांझ

नारंगी सांझ
द्वार मेरे
आकर
शरमा गई है
जैसे
मन को बूझ
तन पर
रंग निखर
आया है.
धीमे से चन्दा ने
आके
बिन्दिया का रंग
चुराके
मन को बहकाया.
सावनी सांझ
द्वार मेरे आ
कुछ
कह गई
पाँवों का बिछुआ
माटी को सूंघ
मुझे नवगीत

सुना
मन ही मन
मुस्का गया
जब हुई अकेली
साजन
श्रृंगार में बंध
तुम मेरे
तन पर रह-रह कर
सज गए
लजाई आंखों
के दर्पण में
जो झांका
प्रिय तो
मन रह-रह कर
धड़कता ही गया
आंचल
धीमे धीमे
सरकता ही गया.

इन्द्रधनुष

जब भी
कहीं कोई
बात चलेगी तो
सबसे पहले
तुम्हारा नाम
मेरी जुबान पर आएगा.
...और जब मैं
कुछ न कहूंगी
तब भी
मेरे साथ तुम्हारा नाम
लोगों के होठों से
फिसलेगा
इसलिए कि
तुमने
अपने साथ-साथ
मुझे भी अपने
इन्द्रधनुषीय रंग में
रंग लिया है!!
अब जब बरसात में
अम्बर पर

हरा, लाल, पीला
इन्द्रधनुष
तैरता है
तो भी
मैं इसे
नहीं निहारती ! !
अब
कुछ दिनों से
मैंने
जीता-जागता
हरा, पीला, लाल
रंग पकड़ लिया है.
अपनी रंगहीन चुनरी को
रंगों के समुद्र में
डुबो दिया है
मेरी इन्द्रधनुषी
चुनरी पर
तुम्हारे बिम्ब
साफ झलक
आए हैं.... .
...और जब भी
इन्द्रधनुषीय आंचल
हवा में
लहराता है तो
लोगों की आँखों में
पता नहीं क्यों

मेरे रंग
कांच की किरनों
की तरह
चुभने लगते हैं.
हवा पहले भी थी
शायद
मेरे चारों ओर !
मगर अब एक
सुगन्ध-सी
घुली है गिर्द मेरे
जैसे कि
लिपट गए हैं
गुलाब तन पर
मेरे
और धड़कन
गाने लगी है
चुपके-चुपके से !!
मैंने उड़ती नजर से
रात को चाँद को
देखा था
पीला-पीला-सा
मुरझाया रूप देख
मैंने आँखें
फेरीं थी.
पर

जब लाल-पीले
सतरंगी सपनों
के रंग उड़े
तो चांद भी
हंसता लगा.
लोग कहते—
बासन्ती हवाएं
चलने लगी हैं
आंगन-आंगन
मगर मैं
कहती हूं कि
बसन्त तो
मेरे द्वारे उतर आया है
फूलों की डोली से ! !
पीली-पीली सरसों सा
खिल गया है मन
और मोंगरे, चमेली, रजनीगन्धा सी
स्वप्निल आकांक्षाएं
बस गई हैं
तन मन में.
चंचल झरने सी
झरने लगी हैं
कविताएं
जब मैंने
तुम्हारे नाम में
अपना नाम
मिलाया है.

आँखों की चमक में
मैं
अब
अपने दिन देखती हूं
और
उंगलियों पर
गिनती हूं
रंगों को!!
हथेली की रेखा की टूटन
तो
जोड़ दी है मैंने
अब
हथेली पर ही
चाँद उतार
लिया है!!
हर बिम्ब में
तैरती है
खनकती हंसी
और हवा में
मुस्कराता है
गुलाबी-बासन्ती आंचल!
चुनरी उड़े तो
होली के रंगों-सी
महक तन की
उड़ती है
दूर दूर तक.
लोग

आँखें मलते हुए
कहते हैं
कविता घुल गयी है
हवा में
तब मैं
तुम्हारे नाम
के साथ
अपना नाम
बीज में प्रांकुर की तरह
मिला
दूर-दूर तक
उड़ती हूं
अकुरित होने के लिए.
पलाश है
डाली डाली
और
कचनार से भर
गई है क्यारी
लगता है यूं
जैसे
प्यार ही प्यार
बस गया है
माटी में.
तभी तो
लिखती हूं
फूलों से नाम

माटी पर
और फिर उसे
महसूसती हूं देर तक ! !
क्योंकि मैंने
एक
चाहत पा कर
सारे के सारे
रंग-सुगन्ध
अपने आंगन में
महका लिए हैं !
अब जब लोग
मेरा नाम कहते हैं
तो
वह
तुम्हारा ही नाम
बन जाता है
और
उसकी प्रतिध्वनि
देर-देर तक
दिल के तारों को
छेड़ती रहती है
सितार के तारों
की तरह
गूंजती है
गजल प्यार की
देर-देर तक.

रेलगाड़ी

शोर
फिर
धड़धड़ाती-सी आवाज
कि एक
रेल गुजर गयी
पटरी पर
पटरी चुपचाप
निस्तब्ध-सी
लेटी रही
और
एक शोर
एक जलजला
आंधी सी
उसपर
गुजर गई.
मैंने देखा
पटरी ने
कुछ नहीं कहा...
कभी
कहती भी नहीं कि
उसके
हिस्से में

यह शोर
पलभर
के लिए
आता है
यह
उफान-सा.
जो न कुछ
देता है
न
कुछ लेता है.
बस
पड़ी रहती
वह निस्तब्ध
कि रोज
रात को
या
समयानुसार
शोर के साथ
धुंआँ उगलती
रेल गुजर जाएगी
और
वह करवट भी न
बदल सकेगी
घावों को
दिखा भी
न
सकेगी.

श्मशान शहर

फूलों, तितलियों
व
चिड़ियों की
बात अब
लोग नहीं करते.
जब भी
कहीं कोई
बात चलती है
तो सिर्फ
राजनीति की
क्रिकेट की
या फिल्म की
या फिर
चारों ओर फैले
कड़वे धुंऐ की.
वैसे भी अब,
तितलियां
कम नज़र आती हैं
लोग फूलों की जगह
कैकटस जो उगाने लगे
हैं गमलों में

चिड़िया चोरनी की
तरह
दाना चोंच में दबाए
फुर्र हो जाती है
सारे का सारा
वातावरण ही
सहमा है
बन्दूकों की
आवाजों से
व
भारी-भारी बूटों की
आवाजों से.
दुकानें बन्द
शहर श्मशान से !
लोग
बैठते हैं
घरों के अन्दर
गुमसुम से.
बच्चों की
किलकारी भी डरी सी है !
सड़कों पर
कभी-कभार
गोली की आवाज से
घबराता-दौड़ता
कुत्ता नज़र
आता है !
चिड़िया, कोयल, कबूतर

तो
पता नहीं
कहाँ चले गए है ?
कई-कई दिनों से
देखा नहीं है
उन्हें
मुंडेर पर बैठे
दाना चुगते
या
चोंच लड़ाते।

ढलती शाम

हर
गोधूली बेला को
मैंने
निहारा है.
अरुणिमा समेटता
बूढ़ा भास्कर
कल फिर
आने को कह
जब
पर्वतों की
ओट में
छिपता
तो धीरे-धीरे
आती निशि
को देख
कई बार
मुस्करा दी हूं.
बसुन्धरा
जब
अम्बर को पाने
में

असमर्थ रहती
तो
सुबह
ओस के आंसू
हरी-हरी दूब
पर
बिखेर देती.
तब दुबारा
नन्हा भास्कर
यौवन
को
पार करता हुआ
कहता
शाम जरूर
आएगी
दिन के बाद.

आदर्श

हवा में ठंडक
ज़्यादा
होने लगी है.
अब
तन में सुईयां-सी
चुभने लगी हैं
बन्द कमरों में
अंगीठी सेकते
और रजाई में
घुस कर
देर तक
गप्पें लगती हैं
चर्चा छिड़ती है
उस पगली की
जो बाहर
फुटपाथ पर
पड़ी है.
वह और मैं
दोनों उसकी
दयनीय स्थिति
पर

आह भरते हैं
फिर एक
लम्बा भाषण
झाड़ते हैं
कि
ऐसा होना चाहिए
वैसा होना चाहिए.
यह आज की नहीं
बहुत दिनों से
होती आई
बात है.
मैं
कम्बल देने को
कहती हूं.
पर
वह फिर
बढ़ती महंगाई
की बात
करता है.
उसने
चाय के लिए
कहा
तो मैं
चुप हो गयी.
बस
यही होती है
कि

आदर्श

प्रतिदिन

वह

बात का

विषय बन जाती है.

और हम

कुछ भी न

कर पाने की

कमज़ोरी को

खोखले शब्दों

से ढक

आदर्श

बिखेर देते हैं.

पतझड़

पेड़
लगता है
सठिया गया है.
उसके शरीर पर बह
चमक
और ताजगी
नजर नहीं
आती.
शाखाएं —
पीली पत्तियों से लदी
बीमार
नज़र आती.
हवा
अब भी बहती है
पर
वृक्ष क्या करे ?
रक्त ही नहीं
रहा बदन में
तभी तो
हल्का सा झोंका
टहनी

का अंग-अंग
हिला देता
और
बेचारी
रूग्ण सी पत्तियां
पेड़ के मोह में
जकड़ीं
छूटने न छूटने
की
कशमकश
में ही
बर्बरता से
हवा में झूलती
धरती
पर गिरती है.
एक-दो नहीं
पर
ढेरों
पत्तियां ही पत्तियां
चारों ओर
बिखरी हैं.
भारी जूतों तले
चरमराती
आवाज में रोती
वे
मिट्टी में
मिलती है.

तब
कौन
महसूस
करता है
उनका दर्द ?
यही न कि
पत्तों का
पेड़ से टूटना
बच्चे
खेल मानते हैं
और इसलिए
तो
गिरते पत्तों को
हाथ में
पकड़ते हैं
उछल कर
मसलने
के लिए.

चिड़िया

कुछ
मुट्ठी भर दाने
पीछे
घर के पिछवाड़े
एक
चिड़िया
चुग गई.

वह
लगा रहा
अपना ही
राग अलापने
कि दाने
मुश्किल से
मिलते हैं.
परन्तु
जो मिले
उसने
नहीं संभाले.
चतुर निकली

चिड़िया ही
जो
पेट पालती रही
अपने नन्हों का
और
उसने कुछ
सहेज भी
रखा
बरसात के
लिए.

बात छड़ी की

तुम्हारे हाथ में
एक
छड़ी है.
और
मुझे मालूम
है कि
तुम सबको
उस
एक छड़ी
से ही
हाँकोगे.
तुम्हारे
हाथ से
किसी भी तरह
यह
छड़ी गिरती
नहीं है.
और
हम

आपस की लड़ाई
में
इतने व्यस्त
कि तुम्हारी
छड़ी को
मिलकर
छीन नहीं पाते.
बस
सह
जाते हैं
हर बार.

Indian Institute of Advanced Study
Acc. No. G-1302
Date 11-5-92
SIMLA

सुमन शर्मा — 30 सितम्बर, 1962 पालमपुर हि० प्र० में जन्म, बी० एस० सी०, बी० एड०, एम० ए० (अंग्रेजी) व एम० एड० में अध्ययनरत। सम्प्रति राजकीय उच्च विद्यालय, भवारना में विज्ञान अध्यापिका।

कहानियां, कविताएं
पत्र - पत्रिकाओं में
एवं आकाशवाणी से प्र
रचना साहित्य एवं क
की सदस्या। 'मुट्ठी भर धूप' प्रथम कविता संग्रह।

Library IIAS, Shimla
H 811.8 Sh 23 M
G1302

आवरण सज्जा : गोपाल दास